Chap-4

चतुर्थ अध्याय

नयी कविता में ग्राम्य–बोध की प्रस्तुति तथा भाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति

(क) प्रतीक
(ख) बिम्ब
(ग) भाषा–शैली
(घ) मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ

चतुर्थ अध्याय

नयी कविता में ग्राम्य-बोध की प्रस्तुति तथा भाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति

ग्राम्य–चेतना की दृष्टि से नयी कविता हमारे युग की कविता है। यों तो हर युग का काव्य अपने समय के सच को अभिव्यक्त करता आया है, किन्तु नयी कविता ने ग्राम्य–जीवन तथा ग्राम्य–संस्कृति को सृजनात्मक स्तर पर ग्रहण कर व्यापक मानवीय गरिमा प्रदान की है। नयी कविता का नयापन परम्परा और आधुनिकता, महानगर बोध और ग्राम्य–बोध, कथ्य संदर्भों की विविधता, शैल्पिक प्रतिमानों की विशिष्टता, युगजीवन की व्यापकता, रचनाकार की सत्यनिष्ठा की संधिरेखाओं में जन्मा है। नयी कविता में प्रयोग किए गये पौराणिक प्रतीक, ग्राम्य–जीवन की शब्दावली, मिट्टी की सोंधी खुशबू से सुवाषित उत्प्रेक्षाऍं सम्पूर्ण ग्राम्य परिवेश का चित्र उपस्थित करने वाले बिम्ब, यथार्थ धरातल से जुड़ी कल्पनाएँ और मानवीय संवेदनाओं से जुड़ी हुई सर्जनात्मक दृष्टि यह स्वीकारने को विवश करती है कि नयी कविता का भी अपना एक व्यापक रचनात्मक उद्देश्य है। नयी कविता का भाषागत रचाव बहुआयामी है। नयी कविता के कवियों ने कविता के शिल्प और भाषा में अनेक प्रयोग किए। इस प्रयोग के फलस्वरूप भाषा मात्र अनुभव करने या वर्णन करने का निष्क्रिय साघन न रहकर अनुभव की गहनता से युक्त सक्रिय सृजनात्मक भाषा का रूप ले लेती है, जिसमें शब्द मुक्त होकर निर्वैयक्तिक हो जाते हैं। इसी कारण नयी कविता बोलचाल की भाषा के निकट जाकर भी अपनी सर्जनात्मक शक्ति खोती नहीं बल्कि और बढ़ाती है। शब्दों में उनके साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ भरने के लिए मुक्त आसंग शैली ऊपर से बिखरे और असम्बद्ध दिखायी पड़ने वाले स्मृति–चित्र नये उपमान, प्रतीक, बिम्ब, बलाघात से शब्दों में नयी व्यंजनाएँ भरते हैं।

(क) प्रतीक :

प्रतीक काव्यानुभव और अभिव्यंजना को उत्कर्ष प्रदान करने वाले अनेक साधनों में से एक है। प्रतीक भाषा के वे संकेत हैं जो शब्दों के माध्यम से 'किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि होने को अभिव्यक्त करते हैं। प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार 'प्रतीक' शब्द का अर्थ– 'प्रतीक पु० (सं०) (1) चिह्न, लक्षण, निशान। (2) मुख, मुँह। (3) आकृति रूप सूरत। (4) किसी के स्थान पर या बदले में रखी हुई या काम आने वाली वस्तु, प्रतिरूप। (5) प्रतिमा, मूर्ति। (6) वह जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि हो। (सिम्बल)[1] प्रतीक को परिभाषित करते हुए डॉ० शान्ति स्वरूप गुप्त कहते हैं– "कल्पना से बिम्ब जन्म लेता है और बिम्बों से प्रतीक का आविर्भाव होता है। जब कल्पना मूर्त रूप धारण करती है तब बिम्ब की सृष्टि होती है और जब बिम्ब व्युत्पन्न अथवा बार–बार प्रयुक्त होने से किसी निश्चित अर्थ में निर्धारित हो जाता है तब प्रतीक का निर्माण होता है।"[2] प्राचीन काव्यशास्त्र की शब्दावली में इसे उपलक्षण कहा जा सकता है 'एकपदेन तदार्थान्यपदार्थ कथमूपलक्षम्' ।[3]

कविता अभिधार्थ से आगे भी बहुत कुछ है। भावात्मक और व्यंजनात्मक दोनों ही दृष्टियों से प्रतीक काव्य में शूक्ष्मता, संक्षिप्तता, काल्पनिकता और अर्थ–सौन्दर्य की सृष्टि करता है। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ है– अवयव, अंग, पताका, चिह्न अथवा निशान। प्रतीक के रूप का विवेचन करते हुए आचार्य शुक्ल ने 'चिन्तामणि' में लिखा है– 'किसी देवता का प्रतीक सामने आने पर जिस प्रकार उसके स्वरूप और विभूति की भावना चट मन में आ जाती है उसी प्रकार काव्य में आयी हुई कुछ वस्तुएँ विशेष मनोविकारों या भावनाओं को जाग्रत कर

---

1. सम्पादक– आचार्य रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ० 539–540
2. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ०–425
3. वही, पृ०–425

देती हैं। जैसे कमल पूर्ण कोमल सौन्दर्य भावना जाग्रत करता है, कुमुदिनी शुभ्र हास की, चन्द्र मृदुल आभा की, समुद्र प्राचुर्य विस्तार और गम्भीरता की, आकाश शूक्ष्मता और अनन्तता की इसी प्रकार 'सर्प' से क्रूरता और कुटिलता का 'अग्नि' से तेज और क्रोध का, 'वाणी' से वाणी या विद्या का चातक से निःस्वार्थ प्रेम का संकेत मिलता हैं।[1]

विश्व साहित्य में प्रतीकवाद का समय उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (1850–1940) तक माना जाता है। इस आन्दोलन की व्याप्ति और प्रभाव जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका और इंग्लैण्ड सभी देशों के चिन्तन और साहित्य पर दिखायी पड़ता है। परन्तु इसका चरमोत्कर्ष हमें फ्राँसीसी साहित्य में मिलता है। फ्राँस के कवियों में प्रतिनिधि प्रतीकवादी कवि वर्ले, बोदलेयर, रैम्बों, मलार्मे और वैलरी थे। आँग्ल–अमरीकी रचनाकारों में येट्स, एलन पो और कार्लाइल तथा जर्मन कवियों में गेटे प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रतीक शब्द की परिभाषा के सहारे प्रतीकवाद को नहीं समझाया जा सकता है। 'वाद' के रूप में इसका विशिष्ट अर्थ है। वस्तुतः प्रतीकवाद शुद्ध कविता की खोज का ऐसा प्रयास है, जिसमें कविता को संगीत और स्वप्न के तुल्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यह विशेष प्रकार की काव्यभाषा का आग्रह है। भाषा के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण है, जिसमें वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न ध्वन्यर्थ पर बल दिया जाता है।'[2]

प्रतीक अनन्त काल से साहित्य में व्याप्त रहे हैं। उन्हीं के सहारे हम अपनी भावनाओं को व्यक्त करते रहे हैं। समाज और संस्कृति के साथ प्रतीक घनिष्टता से सम्बन्धित हैं। अपने अतीत की संस्कृति, अपनी सभ्यता प्रतीकों के माध्यम से जीवन्त रहती है। नयी कविता के कवियों को विरासत के रूप में प्रतीकों का प्रयोग पूर्ववर्ती काव्य–परम्परा से प्राप्त हुआ है। इन कवियों ने युग विशेष के सन्दर्भ में नये–नये प्रतीकों का निर्माण कर तथा परम्परागत रूढ़

1. डॉ० ओम प्रकाश अवस्थी, नयी कविता· रचना प्रक्रिया, पृ०–143
2. निर्मला जैन, पाश्चात्य साहित्य–चिंतन, पृ० 191–192

प्रतीकों का नवसर्जन कर उसमें पर्याप्त अभिवृद्धि की है। नए कवियों को एहसास हो गया था कि छायावादी शब्दावली, मुहावरे, प्रतीक, अप्रस्तुत आदि घिस–घिसा कर पुराने पड़ चुके हैं, उनकी अर्थवत्ता समाप्त हो गई है। 'अज्ञेय' ने 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य–संग्रह की कविता 'कलगी बाजरे की' में लिखा है–

"अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार–न्हायी कुईं,
टटकी कली चम्पे की, वग़ैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गये हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"[1]

नयी कविता के कवियों ने विविध प्रकार के प्रतीकों के प्रयोग किए हैं जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं– कलात्मक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, पौराणिक और धार्मिक प्रतीक, वैज्ञानिक प्रतीक, यौन प्रतीक, जीवन के क्रियाकलापों से सम्बन्धित प्रतीक।

अज्ञेय ने प्रकृति–प्रतीकों की सुन्दर योजना द्वारा विराट प्राकृतिक परिवेश के साथ–साथ ग्राम्य जीवन तथा नगरीय हलचल की भी झलक प्रस्तुत की है। 'बावरा अहेरी' काव्य संग्रह में कवि का मुख्य दृष्टिकोण अपने को विराट को समर्पित कर देने में है। 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है। यह वह विराट है जो अपने जाल में सबको समेट लेता है– मझोले परेवा, छोटी–छोटी चिड़ियाँ, बड़े–बड़े पंखी, बेडौल उड़ते जहाज, कलस त्रिसूल वाले मन्दिर, मोटरों के धुएँ आदि।'[2] 'बावरा अहेरी' की प्राकृतिक–प्रतीकों की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

---

1. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–251, (काव्य संग्रह– 'हरी घास पर क्षण भर)
2. बच्चन सिंह– आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ०–268

"भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल–लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जालको
बाँध लेता है सभी को साथ :
छोटी–छोटी चिड़ियाँ, मँझोले परेवे, बड़े–बड़े पंखी
डैनों वाले डील वाले डौल के बेडौल
उड़ने जहाज,
कलस–त्रिसूल वाले मन्दिर–शिखर से ले
तारघर की नाटी–मोटी चिपटी गोल घुस्सों वाली उपयोग सुन्दरी
बेपनाह काया को :
गोधूली की धूल को, मोटरों के धुएँ को भी।"[1]

नयी कविता में ग्राम्य परिवेश एवं वहाँ की संस्कृति से जुड़े प्रतीकों की प्रभूत मात्रा में आयोजना हुई है। श्री नरेश मेहता के काव्य संकलन 'बनपाखी! सुनो!!' में अनेक ग्राम्य–प्रतीकों की सृष्टि हुई है। निम्न प्रतीक दृष्टव्य हैं–

"मुझे द्वार पर लता रूप में उगा देखकर
किसी बधू ने मेरी लता अंगुली में था जीवन बाँस थमाया।"[2]

नयी कविता के सशक्त कवि गजानन माधव मुक्तिबोध ने अनगिनत ग्राम्य जीवन से जुड़े प्रतीकों का प्रयोग किया है उनकी कविता 'चकमक की चिनगारियाँ' में प्रतीकों के माध्यम से गाँव की आर्थिक विपन्नता का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है–

"टूटी गाड़ियों के साँवले चक्के
दिखें तो मूर्त होते आज के धक्के
भयानक बदनसीखी के।
जहाँ सूखे बबूलों की कँटीली पाँत
भरती है हृदय में धुन्ध–डूबा दुःख,
भूखे बालकों के श्याम चेहरों साथ
मैं भी घूमता हूँ शुष्क,
आती याद मेरे देश भारत की।
अरे! मैं नित्य रहता हूँ अँधेरे घर

---

1. अज्ञेय सदानीरा : सम्पूर्ण कविताएँ भाग–1, पृ० 265–66, (काव्यसंग्रह– 'बावरा अहेरी')
2. श्री नरेश मेहता, बनपाखी! सुनो!!, पृ०–29

जहाँ पर लाल ढिबरी–ज्योति के सिर पर
कसकते स्वप्न मँडराते।"[1]

प्राचीन अर्थ प्रतीकों की बहुलता की दृष्टि से नरेश मेहता अग्रणी कवि हैं। प्रतीकों का इतना सशक्त प्रयोग कवि ने किया है जिसे सहज रूप में आत्मसात् करना सम्भव नहीं है। 'जब हम अपने प्राचीन साहित्य का गहराई से आलोड़न करते हैं, उसके विभिन्न सांस्कृतिक धरातलों पर जब हम विचरण कर लेते हैं, तभी जाकर इन प्रतीकों और बिम्बों को हम सही रूप में ग्रहण कर पाते हैं। परन्तु नरेश मेहता की कवि मनीषा जैसे निरन्तर उसी धरातल पर सृजनरत है।'[2] उनके काव्य–संग्रह 'उत्सवा' की ऐसी ही प्रतीकात्मक पंक्ति दृष्टव्य है–

"पुराकथाओं के बाघम्बर लपेटे
वह आग्नेयनेत्री
रूद्र–
सूर्यों पर लेटा हुआ
संहार का धूम पी रहा है
और सृष्टि का प्रकाश उगल रहा है।
यह कैसा महाश्मशान का स्वर्गोत्सव है!
शक्ति के महाशव सदाशिव का यह कैसा लीला भाव है?
यह किसका लीला–भाव है?" [3]

श्री नरेश मेहता जी के काव्य–संकलन 'बनपाखी! सुनो!! में अनेक ग्राम्य–जीवन से जुड़े प्रतीकों की सृष्टि हुई है। जिसमें ग्रामीण परिवेश एवं वहाँ की संस्कृति की मनमोहक दृश्यावलियाँ अपनी पूरी जीवन्तता के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। 'पीले फूल कनेर के' कविता की निम्न काव्य–पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

"पाट पट गये,
कगराये तट,
सरसों घेरे खड़ी हिलाती पीत–चँवरिया सूनी पगवट,
सखि! फागुन की आया मन पे हलद चढ़ गयी–
मँहदी महुए की पछुआ में
नींद सरीखी लाज उड़ गयी–

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ०–166
2. रामकमल राय, नरेश मेहताः कविता की ऊर्ध्वयात्रा, पृ०–104
3. श्री नरेश मेहता, उत्सवा, पृ०–98

कागा बोले मोर अटरिया
इस पाहुन बेला में तूने
चौमासा क्यों किया पिया?
क्यों किया पिया?
यह टेसू सी नील गगन में हलद चाँदनी उग आयी री–उग आयी री–''[1]

ग्राम्य–प्रतीक से सम्बन्धित 'मालवी फाल्गुन' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

''उगे टीमरू सा फगचन्दा
जगरे हलद प्रकाश!!
फागुनमासे अमलतास सम
उघड़े नील अकास!!'[2]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'गोबरैले' कविता में ठेठ जनजीवन से प्रतीक–विधान चुनकर महानगर की ऐश्वर्य भरी दुनिया के राग–रंग में काव्योचित हस्तक्षेप करने की कोशिश की है। जो नयी कविता की एक उपलब्धि है–

''हरे हैं जंगल
हरे हैं घाव
हरे हैं दुःख
लेकिन सब काला–काला दीखता है
(इन्हीं गोबरैलों के कारण)
काली हैं आँधियाँ
काला है खून
काले हैं मन
लेकिन सब हरा–हरा दीखता है
(इन्हीं गोबरैलों के कारण)'' [3]

शमशेर बहादुर सिंह की कविता 'शरीर–स्वप्न' में ग्राम्य जीवन के प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग हुआ है–

''मकई से लाल गेहुँए तलुए
मालिश से चिकने हैं।.......
सूखी–भूरी झाड़ियों में व्यस्त

---

1. श्री नरेश मेहता, बनपाखी! सुनो!!, पृ० 44–45
2. वही, पृ०–52
3. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०–80

चलती–फिरती पिण्डलियाँ!.........'[1]

जब कवि अपनी प्राचीन परम्परागत मान्यताओं को त्यागकर स्वतन्त्र रूप से अप्रस्तुत अर्थ के भाव संवेदन के लिए वैयक्तिक अर्थ में प्रस्तुत को ग्रहण करता है वहाँ मौलिक या वैयक्तिक प्रयोग प्रतीक का होता है। 'अंधा युग' अनास्था का, 'ठण्ढा लोहा' विफलता का, 'बावरा अहेरी' सूर्य का, 'संशय की एक रात' क्षण–बोध, अंतर्द्वन्द्व का प्रतीक बनाकर शीर्षक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। धर्मवीर भारती ने अपने काव्य–संग्रह 'सात गीत–वर्ष' में यौन प्रतीकों का प्रयोग कुछ इस प्रकार से किया है–

''प्रातधूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी–अभी जागी
खुमार से भरी
नितान्त कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिसकर
रतिश्रान्ता–सी मलिन हो गयी!'[2]

'घाटी का बादल' नामक इस कविता में कुमारी घाटी का प्रतीक अविवाहित नवयौवना के रूप को स्पष्ट करता है और कामातुर मेघों के आलिंगन के द्वारा जो मलिनता रतिक्रिया में कुमारी को भोगनी पड़ी है उसका चित्रण यौन कुण्ठागत प्रतीकों के रूप में किया गया है।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का लगाव अपने परिवेश से बहुत गहरा था, इस बात की साक्षी उनकी कविताएँ हैं अपनी पीड़ा, अपने सुख, अपने प्रेम को कविताओं में पाने पहचानने–बाँटने के लिए वे जिन ठिकानों की ओर जाना–लौटना पसन्द करते हैं उनमें एक ठिकाना तो वह गाँव रहा है जहाँ वे जन्में और बड़े हुए। 'बाँसगाँव' नामक कविता में प्रयुक्त ग्राम्य–प्रतीकों द्वारा इसे स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है–

''सड़क के किनारे एक पूरे पके कटहल के कोये खा

1. सम्पादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ०–92
2. धर्मवीर भारती– सात गीत– वर्ष, पृ०–95

वह डकारता चला गया,
धूप से जले नंगे काले जिस्म पर
सफेद जनेऊ की चमक
नहीं बन पायी चमक मेरी आँखों में।
× × × × × ×
सँकरी गली में खड़े साँड़ के मुख की खामोशी में
हर बार एक उम्र के लिए जुगाली करती रह जाती है।'[1]

अज्ञेय के अधिकांश यौन प्रतीक प्रकृति से लिए गये हैं। उनके प्रतीकों पर फ्रायड, आन्द्रे, लारेन्स आदि का प्रभाव डॉ० रामविलास शर्मा ने स्वीकार किया है। उनके काव्य–संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' से उद्धृत प्रतीक दृष्टव्य है–

"जब पपीहे ने पुकारा– मुझे दीखा–
दो पंखुरियाँ झरीं लाल गुलाब की, तकतीं पियासी
पिया–से ऊपर झुके उस फूल को
ओठ ज्यों ओठों तले।'[2]

नयी कविता में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग परम्परायुक्त और परम्परामुक्त दोनों ही रूपों में दिखायी देता है। फूल, पत्ते, पल्लव, उजड़ा कानन, दावानल आदि प्रतीक नयी कविता में परम्परागत रूप से ही अर्थ व्यंजित करते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र जी ने 'कमल' को स्निग्धता का प्रतीक माना है–

"ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं।" [3]

नये कवियों ने नयी कविता की भावधारा को प्रवहमान बनाने के लिए प्रतीक योजना की शर्तों का पालन करते हुए सृजन प्रक्रिया को निरन्तर गतिशील बनाये रखा है। नयी कविता में पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग भी प्रचुरता में हुआ है। नयी कविता के पौराणिक तथा मिथकीय काव्यों में प्रतीकों का प्रयोग

---

1. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना– प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०–132
2. अज्ञेय– सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–238
(काव्य संग्रह– 'हरी घास पर क्षण भर')
3. सम्पादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ०–22

वर्तमान सन्दर्भों में हुआ है। इस सम्बन्ध में डॉ० कान्ति कुमार का कहना है कि– "अपने समस्त पाश्चात्य प्रभाव एवं परम्परात्याग के बावजूद नयी कविता भारतीय जातीय जीवन के प्राचीन आख्यानों और प्रतीकों का उपयोग करती है निश्चय ही यह उपयोग नवीन जीवन भूमियों और सन्दर्भों की व्याख्या के लिए किया जाता है।"[1] जो हमें वर्तमान समय की समस्याओं और विसंगतियों से अवगत कराता है।

नरेश मेहता की कृति 'प्रवाद पर्व' में प्राकृतिक प्रतीकों के प्रयोग में 'बावड़ी की काई खाई चट्टानें' समाज की रुढ़िग्रस्त एवं जर्जर मान्यताओं के रूप में प्रयुक्त हुई हैं और 'तेजस्वी पीपल पुरुष' इन रुढ़ियों को चुनौती देने वाले सजग व्यक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। कवि ने इन्हीं मनोभावों को कुछ यूँ व्यक्त किया है–

"एकांत
भयावह बावड़ी की
काई खायी
जर्जर विद्रूप चट्टानों को फोड़कर
प्रतिइतिहास का तेजस्वी
पीपल–पुरुष
हरहराने लगे तो
उसे चुनौती के स्थान पर
सहज सत्य की अभिव्यक्ति
क्यों नहीं माना जाना चाहिए।"[2]

धर्मवीर भारती रचित 'काव्य नाटक' 'अंधा युग' में एक स्थान पर गिद्ध विकृत मानसिकता के प्रतीक के रूप में चित्रित हुआ है– उसकी पाँखें विकृत मनोवृत्तियों के प्रसार में कार्यरत रहती हैं।

"वे गिद्ध हैं
लाखों करोड़ों
पाँखें खोले"[3]

---

1. डॉ० कान्ति कुमार, नयी कविता, पृ०–239
2. श्री नरेश मेहता, प्रवाद पर्व, पृ०–34
3. धर्मवीर भारती, अन्धा युग, पृ०–6

कवि भारती ने अपनी काव्य कृति 'कनुप्रिया' में 'प्रदीप्त सूर्य' को आदिम भय का प्रतीक माना है तथा 'टूटे पंख' असहाय, पराजित मनः स्थितियों को उद्घाटित करते हैं।

"जब मैंने अथाह शून्य में
अनन्त प्रदीप्त सूर्यों को
कोहरे की गुफाओं में पंख टूटे
जुगनुओं की तरह रेंगते देखा है
तो मैं भयभीत होकर
लौट आयी हूँ........"[1]

नयी कविता में प्रतीकों के प्रयोग में काफी विविधता पायी जाती है। नयी कविता में प्रतीक प्रायः जीवन और जगत के सभी क्षेत्रों से लिए गये हैं। वस्तुतः परम्परा से प्राप्त मूल्यों का परीक्षण करते रहना और सच्चे अर्थों में उनसे अपने को जोड़ते रहना एक जीवन्त और ऊर्जावान काव्यधारा की प्रमुख विशेषता है, जो हमें 'नयी कविता' दौर की कविताओं में स्पष्टतः देखने को मिलती है। प्राकृतिक, पौराणिक एवं ग्राम्य जीवन से जुड़े हुए प्रतीकों का प्रयोग जहाँ यह सूचित करता है कि मूल्यमय स्तर पर प्राचीन परम्परा वैज्ञानिक चेतना से उद्भूत प्रश्नों का समाधान किए बिना यथावत ग्रहण नहीं की जा सकती, वहाँ उससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसी स्तर पर परम्परा को सही अर्थों में समझने, परखने और ग्रहण करने की चेष्टा की जा रही है। नयी कविता में ग्राम्य परिवेश से जुड़े प्रतीक वधू, बाँस, हलद, बबूलों की कँटीली पाँत, साँवले चक्के, कसकते स्वप्न, दो साँड़, सूखी भूरी झाड़ियों, झाड़ और झाँखड़, थाला, काँपते मयूर, दूधिया आँचल, भावनाओं का गंगाजल, विछिए आदि प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं, इसके अतिरिक्त अज्ञेय ने अपनी कविता में हरी घास, इन्द्रधनु, सेतु, सागर मछली, चक्रॉतशिला, सावन मेघ, जब पपीहे ने पुकारा, सागर किनारे जैसे प्रतीकों का प्रयोग किया है। पौराणिक प्रतीकों में चक्रव्यूह, अभिमन्यु, गान्धारी, धृतराष्ट्र, कुंती, कर्ण आदि हैं। मुक्तिबोध के प्रतीक विशाल वटवृक्ष, ब्रह्मराक्षस,

---

1. धर्मवीर भारती, कनुप्रिया, पृ०–46

औराँग–उटाँग, पागल मनुष्य, शक्ति पुरुष आदि हैं। कुछ अन्य प्रकृति क्षेत्र से गृहीत प्रतीकों में ध्रुव, लाल रवि, जुगनू, घरौंदे सूरज और सागर, उषा सूर्योदय, टेढ़ा मुँह चाँद, डूबता चाँद, चमकीली शिलाएँ, खेत अन्धी घाटी इत्यादि कुछ सशक्त प्रतीकों का प्रयोग नयी कविता में हमें देखने को मिलता है।

(ख) बिम्ब :

काव्य में बिंब वह शब्द–चित्र है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है अर्थात् शब्दों के माध्यम से खींचा गया वह चित्र जो मनस्चक्षुओं द्वारा देखकर अनुभूत किया जा सके, बिम्ब कहलाता है। "बिम्ब अंग्रेजी के 'Image' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है और उसका अर्थ है किसी पदार्थ को मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रबद्ध करना मानसी प्रतिकृति उतारना। बिम्ब एक प्रकार का भावगर्भित शब्द–चित्र है। यह केवल हमारी चक्षु–इन्द्रिय को ही तृप्त नहीं करता अन्य इन्द्रियों की भूख भी मिटाता है।"[1] प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार 'बिंब' शब्द का अर्थ इस प्रकार है–

'बिंब पुं० (सं० बिम्ब) (वि० बिंबित) (1) प्रतिबिम्ब छाया (2) प्रतिमूर्ति प्रतिकृति। (3) कुंदरू नामक फल (4) सूर्य, चन्द्रमा आदि का मंडल (5) आभास"[2] "काव्य और बिंब के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने 'चिन्तामणि' में अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त किए हैं– "काव्य का काम है कल्पना में 'बिम्ब' (Image) या मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार (Concept) लाना नहीं। 'बिम्ब' जब होगा तब विशेष या व्यक्ति का ही होगा, सामान्य या जाति का नहीं।"[3] नयी कविता के प्रमुख कवि केदारनाथ सिंह 'तीसरा सप्तक' के अपने वक्तव्य में बिम्बों के महत्व को कुछ यूँ समझाते हैं– "एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिम्बों के आधार पर ही की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उसकी आधुनिकता सबसे अधिक उसके

---

1. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ०–421
2. सम्पादक, आचार्य रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ०–591
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि (भाग–1), पृ०–228

बिम्बों में ही व्यक्त होती है। बिम्ब निर्माण के विविध क्षेत्र हैं– प्रकृति, विज्ञान, मनोविज्ञान, धर्म, लोकसाहित्य तथा इतिहास आदि–आदि।"[1]

आधुनिक पश्चिमी काव्यालोचन में बिम्ब को काव्य कसौटी का मुख्य आधार स्वीकार किया गया है। सामान्यतः काव्य–बिम्ब को एक कल्पना चित्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। जिसमें रंग और रेखाओं के अतिरिक्त भावों का सन्निवेश रहता है। पाश्चात्य काव्य में बिम्बवाद का जन्म उन्नीसवीं सदी की भावुकतापूर्ण रोमानी कविता की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। बिम्बवाद के प्रमुख कवि और सिद्धान्तकारों में टी०ई० ह्यूम, एजरा पाउण्ड, आर्लाइंगटन और एमी लावेल की गणना की जाती है। "कविता में सीधी भावाभिव्यंजना के स्थान पर बिम्बवादियों ने एक ठोस विलक्षण बिम्ब मात्र को पर्याप्त माना। जिस कविता का प्रयोजन केवल एक पूर्ण बिम्ब होगा वह अनिवार्यतः छोटी होगी। कविता के विस्तार की प्रकृति पर टिप्पणी करते हुए एडगर एलेन पो ने कहा कि लम्बी कविता में वस्तुतः अन्तर्विरोध है। जिसे हम लम्बी कविता कहते हैं वह वास्तव में छोटी–छोटी कविताओं की एक शृंखला होती है जो गद्यांशों के सहारे अनुस्यूत रहती है।"[2] 'काव्य के विषय में बिम्बवाद ने कविता को गद्यात्मकता से बचाये रखने के लिए तथा काव्य भाषा के परिशोधन के लक्ष्य से जिन नयी धारणाओं का प्रवर्तन किया, उनमें विषय वस्तु की अरूढ़िबद्धता, अर्थ की सघनता स्पष्ट और सीधी अभिव्यक्ति तथा दृश्य तत्व का प्रत्यक्षवत बोध सर्वोपरि है। नयी लयों की रचना पर भी बल दिया गया।'[3]

---

1. सम्पादक– अज्ञेय–तीसरा सप्तक, पृ०–115
2. निर्मला जैन– पाश्चात्य साहित्य– चिन्तन, पृ०–188
3. सम्पादन (जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेवनारायण साही) नयी कविताः सैद्धान्तिक पक्ष, खण्ड–1, पृ०–76

काव्य बिम्ब पर विचार करते हुए डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं– "काव्य–बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।"[1]

प्रयोगवाद की ही तरह नयी कविता में भी बिम्बों की बहुलता पायी जाती है। काव्य वस्तु जितनी संस्लिष्ट, शूक्ष्म और जटिल होती है उसे बिम्ब रूप में अभिव्यक्त करना कवि के लिए उतना ही अनिवार्य होता है। कुछ नये कवियों का मानना है कि नयी कविता के मूल्यांकन के लिए अब रस छंद अलंकार आदि की अपेक्षा बिम्ब को ही काव्य का प्रतिमान स्वीकार करना चाहिए। नयी कविता में बिम्बों की स्थिति के बारे में अशोक वाजपेयी का कहना है– "नयी कविता बिंब– केन्द्रित कविता रही है और अक्सर कवियों में बिंबों का ऐसा घटाटोप तैयार हुआ है कि सातवें दशक तक आते–आते कई जागरूक कवियों को यह महसूस हुआ कि कविता को बिंब से मुक्त कराकर ही उसे जीवंत और प्रासंगिक रखा जा सकता है।"[2]

काव्य के अन्तर्गत मनोविज्ञान और भाषा विज्ञान का बिम्ब क्षेत्र में प्रभाव दिखायी पड़ता है। इस दृष्टि से काव्य में बिम्ब विभाजन का स्वरूप कुछ इस प्रकार हो सकता है–

(1) ऐन्द्रिक बिम्ब (दृश्य, श्रोतव्य, स्पर्श, आस्वाद, घ्राण)।
(2) शब्द प्रधान बिम्ब
(3) अर्थ प्रधान बिम्ब
(4) मुक्त आसंग बिम्ब
(5) दिवास्वप्न बिम्ब
(6) साहचर्य बिम्ब

अज्ञेय द्वारा रचित 'वैशाख की आंधी' शीर्षक कविता में उठती हुई आंधी को बड़े सहज ढंग से चित्रित किया गया है। पीपल, झाऊ, पलास तथा शिरीष

1. डॉ० शान्ति स्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ०–421
2. अशोक वाजपेयी, कवि कह गया है, पृ० 110–11

के वृक्षों का एक विशेष प्रकार की ध्वनि करते हुए हिलना श्रवण तथा दृश्य बिम्ब का चित्र उपस्थित करते है–

"हहर–हहर घहराया काला बादल
लेकिन पहले आया झक्कड़
जाने कहाँ–कहाँ की धूल का :
स्वर लाया सरसर पीपल का मर्मर कछार के झाऊ का
खड़खड़ पलास का, अमलतास का,
और झरा रेशम शिरीष के फूल का!"[1]

रघुवीर सहाय की ग्रामीण जीवन एवं प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में मनुष्य पर मनुष्य और यन्त्र का दबाव तथा प्रकृति के प्रति गहरा मोह उल्लिखित हुआ है। उनकी एक कविता 'पानी के संस्मरण' के सम्बन्ध में प्रख्यात आलोचक डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है– "एक तरह से पानी के ये रूप जीवन के वैविध्य को ही अंकित करते हैं और अपने संक्षिप्त चित्रांकन में भी अनुभव की गहरी तहें खोलते हैं। ऋतु चक्र और तदनुसार बदलते परिदृश्य को यहाँ गतिशील जीवन के बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया गया है और यह बिम्बमाला अपने आप में प्रकृति का दृश्यांकन है। इस तरह दृश्य और बिम्ब का आन्तरिक सम्पर्क इस संक्षिप्त से प्रकृति चित्र में जीवन की अनन्त सम्भावनाएँ खोल देता है।"[2] उक्त कविता की पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"कौंध। दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि
दुपहर : घना ताल: ऊपर झुकी आम की डाल बयार :
खिड़की पर खड़े, आ गयी फुहार
रात : उजली रेत के पार, सहसा दिखी
शान्त नदी गहरी
मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।"[3]

नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर गजानन माधव मुक्तिबोध के प्रसिद्ध काव्य संग्रह "चाँद का मुँह टेढ़ा है" की 'ब्रह्मराक्षस' शीर्षक कविता में गाँव की

---

1. अज्ञेय सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–319
(काव्य–संग्रह, 'इन्द्र, धनु रौंदे हुए थे)
2. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविताएँ, एक साक्ष्य, पृ०–33
3. सम्पादक– सुरेश शर्मा, प्रतिनिधि कविताएँ, रघुवीर सहाय, पृ०–32

बावड़ी का एक चित्र अंकित किया गया है। ग्राम्य जीवन से जुड़े हुए बिम्ब के माध्यम से कवि ने वीरान, वियाबान तथा पुरानी बावड़ियों में निवास करने वाले भूत–प्रेतों तथा उनसे जुड़ी डरावनी लोक धारणाओं को चित्रित किया है–

"बैठी है टगर
ले पुष्प–तारे श्वेत
उसके पास
लाल फूलों का लहकता झौंर–
मेरी वह कन्हेर.....
वह बुलाती एक खतरे की तरफ जिस ओर
अँधियारा खुला मुँह बावड़ी का
शून्य अम्बर ताकता है।
बावड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
वह भीतर से उमड़ती गूँज की भी गूँज,
हड़बड़ाहट शब्द पागल से।"[1]

प्यार के शाश्वत एवं चिरंजन भावबोध से युक्त काव्य कृति 'सात गीत–वर्ष' में संकलित एक कविता 'कस्बे की शाम' में धर्मवीर भारती ने ग्राम्य जीवन की दिनचर्या को चित्रित करने वाला एक मोहक काव्य–बिम्ब उभारा है–

"आँचल से छू तुलसी की थाली
दीदी ने घर की ढिबरी वाली
जमुहाई ले लेकर उजियाली,
जा बैठी ताखों में
घर–भर के बच्चों की आँखों में
धीरे–धीरे उतरी शाम!
इस अधकच्चे से घर के आँगन
में जाने क्यों इतना आश्वासन।"[2]

नरेश मेहता के काव्य–संकलन बनपाखी! सुनो!! की कविताओं में आकाशाच्छादित बादल, वर्षा, चाँदनी, सूर्यास्त, वर्षा से भीगे शहर, प्राकृतिक वनस्पति तथा ग्राम्य दशा आदि के विविध चित्र उकेरे गये हैं। 'ये हरिण सी

1. गजानन माधव मुक्तिबोध, चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० 37–38
2. धर्मवीर भारती, सात गीत वर्ष, पृ०–48

बदलियाँ' नामक कविता में ग्राम्याँचलीय प्रकृति चित्रों को अंकित करने वाले एक सशक्त बिम्ब की सृष्टि उल्लेखनीय है–

"गोमती की रेत।
दूर उस आकाश के पीपल तले
हवाओं के नील डैने थे खुले,
छू तुम्हारा लाल अंचल मृदु झकोरे
संग चलने के लिए करते सदा थे मृग–निहोरे।
पन्थ की पसली सरीखी यह उभरती जड़
जहाँ हम बैठते थे,
कह रही है–
हम मिले थे, साँझ थी, तट था यही, थी कदलियाँ!!
थीं घिरीं उस साँझ भी कबरी हरिण सी बदलियाँ!!"[1]

धर्मवीर भारती के काव्य–संग्रह 'ठण्डा लोहा' में संकलित कविता 'झील के किनारे' में ग्रामीण परिवेश एवं प्रकृति का रमणीय दृश्य सशक्त बिम्ब के माध्यम से उभारा गया है–

"नीली झील के इस छोर से उस छोर तक
एक जादू के सपन–सा तैरता जाता,
उसे छू ओस–भीगी कमल पाँखुरियाँ सिहर, उठतीं,
कटीली लहरियों को लाज रंग जाती सिन्दूरी रंग,
पुरइन की नसों में जागता, अँगड़ाइयाँ लेता
किसी भोरी कुँआरी जलपरी के प्यार का सपना।"[2]

शमशेर की एक कविता 'एक पीली शाम' जिसमें प्रकृति और मनुष्य का संश्लेष है, उसके विषय में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है– 'अटका हुआ पत्ता' या कि 'अटका हुआ आँसू'? यह मनुष्य और प्रकृति का संश्लिष्ट रूप है, कविता में अर्थ की परतें हैं, जिनमें से ध्वनिशास्त्रियों की शब्दावली को नकारते हुए न कोई 'मुख्यार्थ' है और न कोई 'व्यंग्यार्थ'। यह कुल अर्थ संश्लेष है, जो अटके हुए आँसू के बिम्ब से गतिशील हैं.......। शमेशर में जैसा कहा गया देश से अधिक काल की प्रतीति है। एक विशेषण 'पीली' का बिम्ब पतझर, कृशता,

---

1. नरेश मेहता, बन पाखी! सुनो!!, पृ०–10
2. धर्मवीर भारती, ठण्डा लोहा, पृ०–87

अवसाद, थकान की न जाने कितनी भंगिमाएँ उभारता है।"[1] कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

"एक पीली शाम
पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
× × × × ×
अब गिरा
अब गिरा
वह अटका हुआ
आँसू
सांध्य तारक–सा
अतल में।"[2]

'दूसरा सप्तक' में संकलित रघुवीर सहाय की कविता 'बसंत' में अलंकृत बिंब 'मानवीकरण' के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसके द्वारा परंपरित रूप में प्रकृति चित्रण करने की कोशिश की गयी है–

"वन की रानी, हरियाली–सा भोला अन्तर,
सरसों के फूलों–सी जिस की खिली जवानी,
पकी फसल–सा गरूआ गदराया जिसका तन।
अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती।
गरम गुलाबी शरमाहट–सा हलका जाड़ा
स्निग्ध गेहुँए गालों पर कानों तक चढ़ती लाली–जैसा
फैल रहा है।
हिलीं सुनहलीं सुघर बालियाँ
उत्सुकता से सिहरा जाता बदन
कि इतने निकट प्राणधन
नवल कपोलों से रस–गीले होठ खुले हैं
मधु–पराग की अधिकाई से कण्ठ रूँधा है।"[3]

नरेश मेहता रचित कृति 'संशय की एक रात' में स्थिर बिंम्ब का स्वरूप सन्निहित है। स्थिर बिम्ब की अलंकृत शैली में कवि की भावनाएँ कुछ इस तरह व्यक्त हुई हैं–

---

1. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी काव्य–संवेदना का विकास, पृ०–281
2. शमशेर बहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०–101
(सम्पादक– नामवर सिंह)
3. सम्पादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ०–140

"पुनः लौटा दें,
जो कि
मिथिला आम्र कुंजों पर
झुका था
एक नीले हंस सा।"[1]

'बावरा अहेरी' काव्य–संग्रह में अज्ञेय ने खेतों का चित्रण करते समय बीच की पगडण्डी से बँटे होने के कारण थिगलियों की कल्पना की है–

"तोतापरी खेत गेहूँ के
कितनी हैं थिगलियाँ पुराने इस कन्धे पर!
सिलीं मेड़ की या पगडंडी की जर्जर डोरी से–
उपयोगी थिगलियाँ।"[2]

अज्ञेय की कविताओं में गंध के बिम्बों का भी अभाव नहीं है, उनके 'हरी घास पर क्षण भर' काव्य–संग्रह की कविता 'पहला दौंगरा' में स्पष्ट रूप से इसे देखा जा सकता है। जब तपती हुई धरती पर पहली बार वर्षा की बूँदे गिरती हैं तो उससे उठने वाली सोंधी खुशबू का मोहक चित्र इन पंक्तियों में कवि ने खींचा है–

"पड़ा यह दौंगरा पहला
धरा ललकी, उठी, बिखरी हवा में
बास सोंधी मुग्ध मिट्टी की।" [3]

बिम्बों के कवि शमशेर ने ग्वालियर की एक खूनी शाम का अत्यंत सशक्त भाव–चित्र खींचा है। अत्याचार के विरोध में कवि शाम का अत्यंत मार्मिक चित्र अंकित करता है–

"य शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का।
लपक उठीं लहू–भरी दराँतियाँ,
कि आग है,"[4]

---

1. श्री नरेश मेहता– संशय की एक रात, पृ० 4–5
2. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–263 (काव्य–संग्रह, बावरा अहेरी)
3. अज्ञेय सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ भाग–1, पृ०–249 (काव्य–संग्रह, हरी घास पर क्षण भर)
4. संपादक, नामवर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०–41

गिरिजा कुमार माथुर ने 'क्वाँर की दुपहरी' का चित्र कुछ यूँ खींचा है–

"क्वाँर की सूनी दुपहरी,
श्वेत गरमीले, रूएँ–से बादलों में,
तेज सूरज निकलता, फिर डूब जाता।"[1]

प्राकृतिक रम्यता तथा आर्ष–संस्कार और मानवीय उदात्तता का भाव नरेश मेहता की कविताओं में हमें बहुलता के साथ प्राप्त होता है। प्रातः काल का एक रमणीय भाव–बिंब 'किरन धेनुएँ' कविता में दृष्टव्य है–

"उदयाचल से किरन–धेनुएँ
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
पूँछ उठाये, चली आ रही
क्षितिज जंगलों से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमी का
सारस सुना–सुना बोली,
गिरता जाता फेन मुखों से
नभ में बादल बन तिरता,
किरन धेनुओं का समूह
यह आया अन्धकार चरता,
नभ की आम्र छाँह में बैठा, बजा रहा बंशी रखवाला।"[2]

नयी कविता के एक प्रमुख कवि धूमिल ने अपनी काव्यकृति 'संसद से सड़क तक' में संकलित एक कविता 'प्रौढ़ शिक्षा' में डबरे में डूबते सूरज और खेत की मेड़ पर खड़े हुए आदमी की परछाईं की संगति को एक छोटे से काव्य रूपक और सशक्त बिम्ब में संजोकर प्रस्तुत किया है–

"मगर तुम खुद सोचो कि डबरे में
डूबता हुआ सूरज
खेत की मेड़ पर खड़े आदमी को
एक लम्बी परछाईं के सिवा और क्या दे सकता है।"[3]

---

1. संपादक– अज्ञेय, तार सप्तक, पृ०–151
2. संपादक–अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ०–111
3. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०–48

नयी कविता दौर के एक सशक्त कवि कुँवर नारायण ने अपने काव्य संकलन 'परिवेशः हम–तुम' में संकलित एक कविता 'लकड़ी का टूटा पुल' में धूप को कुछ इस प्रकार मूर्त किया है–

"उस लकड़ी के टूटे पुल पर
इस तरह पड़ रही धूप–छाँह
जैसे कोई प्यासा चीता
झरने में अगले पंजे रख पानी पीता।"[1]

'दूसरा सप्तक' में शामिल नयी कविता दौर की कवियित्री शकुन्त माथुर ने सुनसान रात्रि के अँधेरे में सोये हुए गाँव के मार्ग पर बढ़ती हुई गाड़ी को ग्राम्य जीवन की आर्थिक विपन्नता के भावबोध से जोड़कर एक सशक्त बिंब उभारा है–

"गाँव सारे भर चुके थे रात से।
उन गरीबी के घरों में मंद दीपक बुझ चले थे
पास आती फिर निकल जाती हुई
वे रोज संध्या की आवाजें
उन कुओं पर अब नहीं थीं दूर तक।
घाट भी सूना पड़ा था पंछियों के स्वर समेटे
नींद में थे पेड़, केवल वायु की कुछ सरसराहट
भय से जगा देती थी गाड़ीवान को,
और गाड़ी जा रही थी धीरे–धीरे चीरती सुनसान को।"[2]

नयी कविता बिंबों की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण है। रामविलास शर्मा तारसप्तक के एक प्रमुख कवि हैं। उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन, खेत–खलिहान तथा किसान जीवन का आधार फसलों का जीवन्त चित्रण है। एक दृव्य बिंब के माध्यम से कवि ने वर्षा ऋतु में ग्रामीणों की दयनीय अवस्था तथा उनके मकानों की जीर्ण–शीर्ण अवस्था का बहुत ही प्रभावशाली चित्र खींचा है। कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"टपक रहा है टूटा घर, खटिया टूटी है,
एक यहाँ मनचाही सुख की लूट नहीं है।
भरे तराई–ताल, नदी–नाले उतराये,
आता है सैलाब, गाँव जिसमें बह जाये।"[3]

---

1. कुँवरनारायण, परिवेशः हम तुम, पृ०–70
2. संपादक– अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ० 48–49
3. संपादक– अज्ञेय, तार सप्तक, पृ०–208

नयी कविता का बिम्बविधान परम्परागत बिम्ब विधान से हटकर है। इस काव्य–धारा के कवियों की जीवन दृष्टि पृथक है और उनकी काव्य सम्बन्धी मान्यताएँ भी अलग हैं। नयी कविता के कवियों ने बिम्बों का चयन लोक जीवन एवं साहित्य, प्रकृति, धर्म, इतिहास, पुराण, मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों से किया हैं नयी कविता में वस्तुवर्गीय और मानसवर्गीय बिम्बों के साथ–साथ संवेद्य, संश्लिष्ट तथा यौन बिम्बों का प्रयोग हुआ है। नये कवियों ने आम जनजीवन से अपने बिम्ब चुने हैं– गलियों, चौराहों, सड़कों, सीढ़ियों, मकानों आदि के बिम्ब खींचे गये हैं।

काव्य में बिम्बों की इतनी महत्वपूर्ण भूमिका के ही कारण आचार्य शुक्ल ने बिम्बों को काव्य की आत्मा कहा है। 'तीसरा सप्तक' में केदारनाथ सिंह कहते है– ''मैं बिंब निर्माण की प्रक्रिया पर जोर इसलिए दे रहा हूँ कि आज काव्य के मूल्यांकन का प्रतिमान बिम्ब को ही मान लिया गया है। एक अंग्रेज आलोचक का तो यहाँ तक कहना है कि आधुनिक कवि नये–नये बिम्बों की योजना के द्वारा अपनी नागरिकता का शुल्क अदा करते हैं। तात्पर्य यह कि प्राचीन काव्य में जो स्थान चरित्र का था आज की कविता में वही स्थान बिम्ब अथवा 'इमेज' का है।''[1]

काव्य–बिंब की दृष्टि से नयी कविता का युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है बिम्बों का आधार गॉव, कस्बाई जीवन तथा प्रकृति है। प्रकृति के द्वारा काम भावना, रोमांटिक भावना सम्बन्धी विचारों को अभिव्यक्त किया गया है। अधिकांश कवियों ने प्रकृति का नाना रूपों में चित्रण किया है। अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल, शकुंत माथुर, हरिनारायण व्यास आदि ने प्रकृति को काम–प्रतीकों से युक्त कर चित्रित किया है। इसी प्रकार प्रकृति के माध्यम से प्रगति को संकेतित किया गया है, जैसे–सूर्यास्त की लालिमा लहू भरी दराँतियों सी, चाँद, चाँदी की हँसली सा, क्षितिज का टीला चरवाहे सा सुबह मूज बुनती किशोरी–सी, प्राची का रक्तिम क्षितिज रक्त गुलाब–सा आदि। शमशेर बहादुर सिंह, जगदीश गुप्त, धर्मवीर

1. सम्पादक– अज्ञेय तीसरा सप्तक, पृ० 115–16

भारती ने प्रकृति का रोमांटिक भावना से युक्त चित्रण किया है जैसे– रात–बरफ के दुकूल में लिपटी युवती–सी, चंचल बादल–चाँदी के हिरन सा आदि। अज्ञेय मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर भारतभूषण अग्रवाल में अमूर्त चित्रण अधिक हैं जैसे– स्मृति अनाथ बालक के शव को ढोने की पीड़ा–सी, स्मृति–ओस गीले खेतो–सी शीतल आदि।

खण्डित बिम्बों की अधिकता मुक्तिबोध की कविताओं में मिलती है जैसे– 'डूबता चाँद कब डूबेगा, 'ठूठों पर बैठे घुघ्घू दल' भुतही छायाएँ, राक्षस बालक, गांधी जी की टूटी चप्पल, हुँआ–हुँआ की आवाज' आदि। काव्य–बिम्बों की दृष्टि से नयी कविता का युग वैविध्यपूर्ण एवं समृद्धशाली है। इसमें जीवन एवं जगत के सभी पहलुओं को बिम्बों के माध्यम से चित्रित किया गया है।

(ग) भाषा–शैली :

भाषा समाज में सम्प्रेषण–सेतु का कार्य करती है। भाषा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने विचारों व मनोभावों को अभिव्यक्त करते हैं। भाषा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के भाष् धातु से मानी जाती है। जिसका अर्थ है व्यक्त वाणी में कुछ कहना अर्थात् अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त ध्वनि संकेतों द्वारा दूसरे तक पहुँचाना 'व्यक्तायां वाचि' का उल्लेख करते हुए महर्षि पाणिनि ने 'वद्' के अर्थ में ही भाष् धातु को माना है। 'भाष्'+टाष् = भाषा। प्रामाणिक हिन्दी कोश के अनुसार भाषा शब्द का अर्थ है– ''भाषा स्त्री (सं०) (1) मुँह से निकलने वाली व्यक्त ध्वनियों या सार्थक शब्दों और वाक्यों का वह समूह जिसके द्वारा मन के विचार दूसरे पर प्रकट किए जाते हैं। बोली, जबान, वाणी। (2) किसी देश के निवासियों में प्रचलित बात चीत करने का ढंग, बोली। (3) मध्ययुगीन हिन्दी (4) वाणी''[1] तथा प्रामाणिक हिन्दी कोश में 'शैली' का अर्थ कुछ इस प्रकार बताया गया है– ''शैली स्त्री (सं०) (1) चाल, ढब, ढंग। (2) प्रणाली, तर्ज। (3) रीति, प्रथा, रिवाज (4) वाक्य रचना का वह विशिष्ट प्रकार जो लेखक की भाषा–सम्बन्धी निजी विशेषताओं का सूचक होता है। (स्टाइल) (5) हाथ से

1. सम्पादक– आचार्य रामचन्द्र वर्मा, प्रमाणिक हिन्दी कोश, पृ०–625

बनाई जाने वाली वस्तुओं में ऐसी बातों का समूह जिनकी विशेषताओं में उनके कर्ताओं की मनोवृत्ति की एकरूपता के कारण साम्य हो, कलम, जैसे मुगल या पहाड़ी शैली के चित्र।"[1]

काव्यभाषा तथा शास्त्रीय भाषा सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाली भाषा पर आधारित होती है। काव्यभाषा अपने को सामान्य भाषा से अलग करने के लिए क्रमशः वक्रता या विचलन तथा अप्रस्तुतों का सहारा लेती है। सामान्य भाषा ही वह मूल भाषा होती है जिसे एक विशिष्ट दशा में विकसित करके कवि अथवा साहित्यकार उसी भाषा को शास्त्रीय अथवा काव्य भाषा बना देता है। "वड्सवर्थ ने काव्य–भाषा के सम्बन्ध में लिखा था कि वह जनसाधारण की भाषा हो और छन्द–बद्ध रचना तथा गद्य की भाषा में न तो कोई तात्विक अन्तर होता ही है और न हो सकता है।[2]

सामान्य रूप से बोली जाने वाली भाषा ही अपने परिनिष्ठित एवं विकसित रूप में काव्यभाषा का रूप ग्रहण कर लेती है तथा काव्यभाषा निरन्तर प्रयोग के कारण अपनी अर्थवत्ता नष्ट कर देती है तब कवि के लिए ये मानक शब्द अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति में अपर्याप्त सिद्ध होने लगते हैं, जिसके लिए उसे सामान्य बोलचाल की भाषा के शब्दों का इस्तेमाल करना पड़ता है। "कविता की भाषा के सम्बन्ध में इलियट का मत है, भाव और संवेदना की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति जनसाधारण की भाषा में ही हो सकती है। "कवि की भाषा को युग की सामान्य व्यवहार की भाषा के इतना निकट होना चाहिए कि श्रोता या पाठक उसे सुनकर या पढ़कर कह उठे कि यदि मैं कविता में बात करना जानता तो इसी प्रकार बात करता।"[3]

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी काव्य–भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं– "काव्य–भाषा वह है जो काव्य के परंपरागत भेदक

1. सम्पादक– आचार्य रामचन्द्र वर्मा, प्रमाणिक हिन्दी कोश, पृ०–796
2. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ०–122
3. वही, पृ०–180

लक्षण तुक, छंद, अलंकरण, लय, रस आदि के विलुप्त हो जाने के बाद शेष रह जाती है।"[1] वड्र्सवर्थ कवि की भाषा–शैली को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं– "सच्ची भाषा वह है जो मनुष्य भावावेग (Passion) के क्षणों में बोलता है, कवि जितना ऐसी भाषा के निकट पहुँच सकेगा, उसकी भाषा–शैली उतनी ही सच्ची मानी जायेगी।'[2]

आदिकाल में प्राकृत–अपभ्रंश के साहित्य में लोकव्यापी जीवन की तरलता से जिन छन्दों की सृष्टि हुई उनमें संगीतात्मकता एवं समवेत्–गायन की प्रवृत्ति से उत्पन्न गेयता विशेष परिलक्षित होती है इसलिए उनमें तुक का विधान है अन्य अंशों में वे लोक जीवन की प्रवहमानता को सहज अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। आधुनिक युग तक कुछ परिवर्तनों के साथ मुख्यतया यही मात्रिक गेय रूप विधान चलता रहा। परन्तु अब नयी परिस्थितियों के दबाव से वह मिथ्या साबित होने लगा है। परम्परा से प्राप्त शुष्क एवं जड़ माध्यम से नवीन अनुभूतियों को लम्बे समय तक व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसलिए कविता इन विभिन्न प्रकार के कठोर बन्धनों से शनैः–शनैः मुक्त होती जा रही है। मनोजगत से जब कवि भावों की स्वतन्त्रता का अनुभव करने लगा है तो वाह्य रूप से इन कृत्रिम बन्धनों को वह जरूरत से ज्यादा महत्व नहीं दे सकता। "पंतजी ने एक युग–द्रष्टा की तरह छायावाद काल में ही 'युगवाणी' के अयास बहने की घोषणा कर दी थी, तब जबकि 'छंद के बंध' और 'प्रास के रजतपाश' पूरी तरह खुल भी नहीं पाये थे। आज खुलने के स्थान पर वे चरमराकर टूट रहे हैं।"[3] काव्य–भाषा के संदर्भ में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं– "आज की कविता को जाँचने के लिए, जो अब सचमुच 'प्रास के रजत पाश' से मुक्त हो चुकी है, अलंकारों की उपयोगिता अस्वीकार कर चुकी है और छन्दों की पायलें उतार चुकी है,

1. डॉ० नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृ०–98
2. डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त, पृ०–124
3. सम्पादन (जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण शाही) नयी कविता सैद्धान्तिक पक्ष (खण्ड–एक), पृ० 21–22

काव्य–भाषा का प्रतिमान शेष रह गया है, क्योंकि कविता के संघटन में भाषा प्रयोग की मूल और केन्द्रीय स्थिति है– 'कविता उत्कृष्टतम शब्दों का उत्कृष्टतम क्रम है।"[1]

नयी कविता की कतिपय विशेषताएँ आज से बहुत पूर्व निराला में ही दृष्टिगत हुईं। इसलिए नयी कविता और उसकी कुछ मूलभूत प्रवृत्तियों के पुरस्कर्ता निराला हैं और नयी कविता का प्रारंभ छायावादोत्तर युग में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के साथ–साथ मानना समीचन है। निराला का काव्य–वैविध्य आधुनिक काल में अतुलनीय है, वे मुक्त छंद के प्रणेता हैं। परंपरित छंद को तोड़कर उसे नये ढंग से बनाने में उनका विशेष ध्यान रहा। मुक्त छंद को उन्होंने जातीय मुक्ति के व्यापक संदर्भ से जोड़ा। 1916 में प्रकाशित सबसे प्रथम रचना "जुही की कली" मुक्त छन्द परम्परा का प्रारम्भ है। मुक्त–छंद का तात्पर्य छंद से मुक्ति नहीं, अपितु छंद का ऐसा मूलभूत स्वच्छन्दबंधनहीन रूप है, जिसमें भाव के प्रवाह में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। मुक्त छंद के विषय में निराला जी ने 'परिमल' की भूमिका में कहा है कि 'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है। मुक्त छंद तो वह है जो छंदों की भूमि में रहकर भी मुक्त है। निराला जी ने मुक्त छंद का प्रयोग करके और छन्दशास्त्र की जकड़ से कविता को मुक्त करके नया रूप प्रदान किया है।

नयी कविता आन्दोलन छायावादी और प्रगतिशील आन्दोलनों से भिन्न था। इसमें विचारों और अनुभूतियों के स्तर पर दो भिन्न ध्रुवों पर रहने वाले कवि भी शामिल थे, लेकिन काव्य के रूप और शिल्प की दृष्टि से उनमें ऐसा ध्रुवीकरण नहीं था। नये कवि काव्य की प्रचलित शैलियों और रूढ़ माध्यमों में परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन की यह आकांक्षा, नये जीवनमूल्यों और जीवन स्थितियों से जुड़ी थी। इसने नयी कविता को नये शिल्प और नयी भाषा की

---

1. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृ०–98

खोज की ओर प्रकृत किया। "नयी कविता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए उन प्रतीकों, बिम्बों और साधनों का प्रयोग किया है जो यथार्थ जीवन से उपजे हैं और जिनका सीधा सम्बन्ध उस वैयक्तिक भावस्तर से है जो प्रत्येक क्षण के सार्थक अस्तित्व के साथ हमें आन्दोलित करता रहता है।"[1]

नयी कविता में भाषा की संरचना विविध आयामी है। नयी कविता की भाषात्मक संरचना कथ्यमूलक संदर्भों के साथ–साथ सीधे परिवेश से भी जुड़ी हुई है। इसलिए कवि के कथ्य का सम्प्रेषण करने में पूर्णतया सक्षम है। नयी कविता में अधिकांश रचनाकारों की भाषा पर अंग्रेजी का प्रभाव है। उसमें विभिन्न भाषाओं तथा बोलियों के प्रचलित शब्दों का प्रयोग हुआ है तथा ठेठ ग्राम्य जीवन तथा अंचल के शब्दों का प्रयोग, प्रादेशिक तथा स्थानीय लहजे, जनसामान्य में प्रचलित शब्दों का प्रयोग आदि से भाषा में नवीन अर्थों के संवहन की सामर्थ्य उत्पन्न हुई है।

नयी कविता की भाषा में शब्दों के चयन के प्रति कोई विशेष नीति नहीं लक्षित होती है। उसमें कोमल और कठोर तथा देशी एवं विदेशी तथा प्रादेशिक भाषाओं के साहित्यिक और लोक प्रचलित तत्सम–तद्भव सभी प्रकार के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। आज भी नयी कविता की भाषा स्वयं अपनी आन्तरिक रचना के सामर्थ्य को बढ़ाने में संलग्न है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि हिन्दी की नयी कविता युगानुरूप भाव–बोध को अपने सम्पूर्ण वैशिष्ट्य के साथ अभिव्यक्त करने में सर्वथा सक्षम है।

नयी कविता युग में नयी भाषा की तलाश इस उद्देश्य को लेकर की जा रही थी कि भाषा शक्तिपूर्ण हो तथा सीधी और सचोट हो। सीधी सचोट भाषा ही सम्प्रेषण के लिए उपयुक्त होगी। अज्ञेय की दृष्टि में नयी सार्थक भाषा की तलाश जीवन्त मानवीय सम्बन्धों की पहचान है–

"हम सभी भिखारी हैं।
भाषा की शक्ति

1. लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान (पुरोवचन से उद्धृत), पृ० 3–4

यह नहीं कि उसके सहारे
सम्प्रेषण होता है–
शक्ति इसमें है कि उसके सहारे
पहचान का यह सम्बन्ध बनता है जिसमें
सम्प्रेषण सार्थक होता हैं।''[1]

नयी कविता युग के सशक्त हस्ताक्षर अज्ञेय मानवीय व्यक्तित्व की व्याख्या में भाषा को अनिवार्य तत्व मानते हैं। 'भाषा उनके लिए माध्यम नहीं, अनुभूति है। सर्जनात्मकता की समस्या से सतत् जूझने वाले रचनाकार के लिए यह उचित है कि वह भाषिक सर्जन की क्षमता को गहरे ढंग से समझे।' अज्ञेय ने एक जगह लिखा है, ''मैं उन व्यक्तियों में से हूँ और ऐसे व्यक्तियों की संख्या शायद दिन–प्रतिदिन घटती जा रही है– जो भाषा का सम्मान करते हैं और अच्छी भाषा को अपने आप में एक सिद्धि मानते हैं।[2] यहाँ अच्छी भाषा से आशय अलंकार युक्त भाषा नहीं है बल्कि उसकी अच्छाई इसमें है कि वह भाषा और अनुभूति के अद्वैत को स्थापित करे। भाषा की अनेक भंगिमाओं को निखारते–निखारते उन्होंने भाषा का सबसे प्रभावी रूप 'मौन' के स्तर पर अनुभव किया है। लेकिन इस 'मौन' से 'शैथिल्य' नहीं, तनाव व्यंजित होता है, ऐसा तनाव जो कलाकृति में आधार रूप में स्थित रहता है–

''तू काव्य :
सदा–वेष्टित यथार्थ
चिर–तनित,
भारहीन, गुरू,
अव्यय।
तू छलता है
पर हर छल में
तू और विशद, अभ्रान्त,
अनूठा होता जाता है।''[3]

---

1. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ० 402
(काव्य–संग्रह, नदी की बॉक पर छाया)
2. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, आधुनिक कविता, यात्रा, पृ० 66–67
3. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ०–96
(काव्य–संग्रह ऑगन के पार द्वार)

अज्ञेय के लिए मौन मितकथन है, कहने और कहने के बीच अनकहना है, तथा उसमें आत्मदान का भाव है, जहाँ अभिव्यक्ति आक्रामकता है, मौन ही अपने को दे देना है। अज्ञेय की काव्य–भाषा मितकथन द्वारा गंभीर अर्थ लक्षित करती है–

"मौन भी अभिव्यंजना है–
जितना तुम्हारा सच है
उतना ही कहो"[1]

कविता में मौन पर सकारात्मक दृष्टि रखते हुए प्रख्यात आलोचक नामवर सिंह कहते हैं कि– 'कविता में मौन की सभी स्थितियाँ पराजय और समझौते की स्वीकृति नहीं होती। धनुष की प्रत्यंचा के तनाव की एक स्थिति वह भी होती है जब टंकार की ध्वनि अश्रव्य हो जाती है। केदारनाथ सिंह के शब्दों में उस समय भाषा "जिह्वा पर नहीं बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में सटी हुई" प्रतीत होती है। इस मौन को व्यक्त करने वाली काव्य–भाषा में खौफनाक ताकत होती है।"[2] काव्य पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार हैं–

"तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार'
वहाँ लिख दो 'सड़क'
फर्क नहीं पड़ता
मेरे युग का मुहाविरा है
फर्क नहीं पड़ता
× × × ×
और भाषा जो मैं बोलना चाहता हूँ
मेरी जिह्वा पर नहीं
बल्कि दाँतों के बीच की जगहों में सटी है।"[3]

वैयाकरणों ने अभिधा को ही काव्य का मूल तत्व माना है नयी कविता के कवियों ने भाषा के उसी मूल तत्व को पकड़ने का प्रयास किया है। नयी कविता के कवियों ने निराला के समय से ही चली आ रही सपाट बयानी एवं चालू

---

1. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–310
(काव्य–संग्रह, इन्द्र धनु रौंदे हुए ये)
2. डॉ० नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृ०–114
3. सम्पादक– परमानन्द श्रीवास्तव, केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 91–92

मुहावरे की भाषा को अपनाया। 'कविता में सपाट–बयानी का यह आग्रह वस्तुतः गद्य–सुलभ जीवंत वाक्य–विन्यास को पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जिसके मार्ग में बिंबवादी रूझान निश्चित रूप से बाधक रहा है।'[1]

सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, धूमिल, श्रीकान्त वर्मा आदि कवियों ने सपाटबयानी का प्रयोग किया है। दरअसल यह सपाटबयानी गद्य की भाषा, अखबार की भाषा या बातचीत की भाषा न होकर जिन्दगी के यथार्थ अनुभव की भाषा है। यह एक ऐसे कवि की भाषा है जो चौराहे पर खड़ा है और भीड़ से घिरा हुआ है। इन कवियों ने संस्कारी भाषा के आभिजात्य को तोड़कर एक ऐसी भाषा को काव्यभाषा बनाने का प्रयास किया है, जिसमें हम साँस लेते हैं और सोचते हैं, वह भाषा और कोई नहीं यही सपाटबयानी है। रघुवीर सहाय की कविता 'अगर कहीं मैं तोता होता' भाषा से रचनात्मक खिलवाड़ करके उसमें नयी अभिव्यंजना पैदा करने की कोशिश करती है। भाषा का यह मामूली सा लगने वाला खेल सपाट भाषा में होते हुए भी कवि की व्यंग्यात्मक अनुभूति को ठोस और मूर्त रूप देता है। कविता की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"अगर कहीं मैं तोता होता
तोता होता तो क्या होता?
तोता होता।
होता तो फिर?
होता, 'फिर' क्या?
होता क्या? मैं तोता होता।
तोता तोता तोता तोता
तो तो तो तो ता ता ता ता
बोल पट्ठे सीता राम।'[2]

नयी कविता में वकतव्य देने वाले और सपाटबयानी करने वाले एक प्रमुख कवि धूमिल हैं। उन्होंने अपने समय में भाषा की जड़ता और अपर्याप्तता को बखूबी पहचाना था, तभी तो वे कहते हैं–

---

1. डॉ० नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान, पृ०–127
2. सम्पादक– सुरेश शर्मा, रघुवीर सहाय, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०–22

"अब यहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर संकेतों
और बैलमुत्ती इबारतों में
अर्थ खोजना व्यर्थ है।"[1]

अज्ञेय की कविता–भाषा का आधार बोल–चाल की भाषा है। जिसमें अलंकृति अथवा गरिमा नहीं है, लोक जीवन की शब्दावली तथा मुहावरे हैं, शिल्प का रूखापन, खुरदरापन है। कवि ने 'आज तुम शब्द न दो' नामक कविता में भाव यन्त्र के लिए 'सूखी घास–फूस की मड़िया' का बिंब यूँ ही नहीं प्रयुक्त किया है। न उसमें अनावश्यक रूप से 'प्रकृति की ओर वापस चलो' की पुकार है, बल्कि यह अज्ञेय की काव्य–संवेदना का एक पक्ष है जो विशुद्ध है बेलौस है, अकृत्रिम है। काव्य पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं–

"मेरा भाव–यन्त्र?
एक मड़िया है सूखी घास–फूस की
उसमें छिपेगा नहीं औघड़ तुम्हारा दान–
साध्य नहीं मुझ से किसी से चाहे सधा हो।"[2]

नयी कविता में ग्राम्य–जीवन को केन्द्र में रखकर लोकधुनों पर आधारित कविताओं का भी सृजन किया गया है। केदारनाथ सिंह नयी कविता के एक ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने लोकभाषा को समृद्ध बनाने हेतु लोक धुनों पर आधारित रचनाएँ भी प्रस्तुत की हैं–

"रात पिया, पिछवारे पहरू ठनका किया!
कँप–कँप कर जला दिया,
बुझ–बुझ कर यह जिया,
मेरा अंग–अंग जैसे,
पछुए ने छू दिया,
बड़ी रात गये कहीं पण्डुक पिहका किया!"[3]

नयी कविता में अलंकार सम्पूर्ण रूप में नहीं मिलते उनके कुछ टूटे–फूटे हिस्से मिलते हैं, कुछ पंक्तियाँ मिलती हैं, अलंकारों का आभास मिलता है,

---

1. धूमिल, संसद से सड़क तक, पृ०–8
2. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–273 (काव्य संग्रह–बावरा अहेरी)
3. सम्पादक, अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृ०–128

कहीं–कहीं उपमा और रूपक तथा कहीं विभावना और विशेषोक्ति एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों की संकर संसृष्टि मिलती है। विरोधाभासों एवं विसंगतियों के माध्यम से नयी कविता के कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति को पैना बनाने का प्रयास किया है। शमशेर की कविता 'बात बोलेगी' में विभावना एवं विशेषोक्ति को हम देख सकते हैं–

"बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।
सत्य का मुख
झूठ की आँखें
क्या देखें।"[1]

उपमा, रूपक के अलावा नयी कविता में मानवीकरण, उत्प्रेक्षा, रूपकातिश्योक्ति आदि अलंकारों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया गया है। अज्ञेय, नरेश मेहता, कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती और गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में उत्प्रेक्षा अलंकार बहुलता के साथ प्रयुक्त हुआ है। उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से कुँवरनारायण ने 'रात' का सुन्दर चित्र खींचा है। कविता में सितारे मानों कुण्डली मारे हुए सर्प हों, ज्योतिस्नात रत्न अंधकार में मानों बिन्दुओं के रूप में चमक रहे हों–

"अंधेरे कुन्तलों में
लहर खाती रात
मानो सर्प लाखों कुंडली मारे
सितारे, रत्न–ज्योतिस्नात
चुभ तिमिर में चमचमाते बिन्दु।"[2]

नयी कविता युग में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग भी बहुतायत के साथ हुआ है। मानवीकरण अलंकार का प्रयोग प्रमुखतः कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, शकुन्त माथुर की कविताओं में हुआ है।

---

1. सम्पादक– डॉ० नामवर सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ०–43
2. कुँवरनारायण, चक्रव्यूह, पृ०–35

शकुन्त माथुर ने 'पूर्णमासी रातभर' कविता में पूर्णमासी की रात का मानवीकरण नायिका के रूप में किया है। काव्य पंक्तियाँ निम्नवत् हैं–

"पूर्णमासी रात–भर
पीती रही सुधा
अंक में शशि के सिमटकर
धोती रही श्यामल बदन
सुध–बुध बिसार
दिन सरीखी श्वेत चादर ढाँक........"[1]

नयी कविता के कुछ कवियों ने अपनी उलझी हुई संवेदना को फैंटेसी के माध्यम से अभिव्यक्त किया जिनमें मुक्तिबोध प्रमुख हैं। फैंटेसी का प्रयोग मुक्तिबोध ने 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', ब्रह्मराक्षस, ओरॉगउटाँग तथा 'अँधेरे में आदि कविताओं में किया है। उलटवाँसी आदि के प्रयोग की दृष्टि से, धूमिल, राजकमल चौधरी तथा लीलाधर जगूड़ी प्रमुख हैं।

नयी कविता का कवि अपनी जटिल और उलझी हुई संवेदना को सटीक अभिव्यक्ति देने के लिए वक्रतापूर्ण भाव–भंगिमाओं का सहारा लेता है। कभी वह शब्दों का विच्छेदन करके तो कभी शब्दों के मध्य अन्तराल रखते हुए वैचित्र्य की सृष्टि करता है। संवेदनाओं की जटिलता से आक्रान्त नयी कविता के कवियों ने सही बटे के रूप में शब्द वैचित्र्य प्रयोग किये हैं। कवि कुँवरनारायण ने अपनी एक कविता 'एक आश्वासन' में 'नचने' और 'फँसने' का सही बटे के रूप में प्रयुक्त होना कवि के अन्तः संघर्ष को दर्शाता है। कवि अंतिम क्षण तक इसी अनिश्चय में पड़ा रहता है कि जीवन को नचने दिया जाय या फँसने दिया जाय। कवि ने गणितीय पद्धति से अपना अनिश्चय व्यक्त किया है–

"सब्र अभीooo और सब्रooo
जीवन को बहने दो,
किसी एक निर्णय तक
लहरों को बनने दो,
कोख से उगलने दो
लहरों की गुत्थियाँ,

---

1. सम्पादक, अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ०–51

निरुद्देश्य भंवरों में
नचने
फंसने दो यहाँ वहाँ"[1]

भाषागत वैचित्र्य को निखारने के लिए नयी कविता के कवियों ने कोष्ठकों का प्रयोग किया। विराम संकेतों, अंकों तथा सीधी और तिरछी लकीरों, सीधे या उल्टे अक्षरों, धन–ऋण चिह्नों, त्रिकोण, त्रिभुज, वर्गमूल आदि चिह्नों का प्रयोग कर अपनी उलझी हुई संवेदना को अभिव्यक्त किया है। विभिन्न कोष्ठकों का प्रयोग हम धूमिल की कविताओं में देख सकते हैं–

"हत्यारा! हत्यारा!! हत्यारा!!!
[मुझे ठीक–ठीक याद नहीं है। मैंने यह
किसको कहा था। शायद अपने–आपको
शायद उस हमशक्ल को (जिसने खुद को,
हिन्दुस्तान कहा था) शायद उस दलाल को
मगर मुझे ठीक–ठीक याद नहीं है]"[2]

नयी कविता के कवियों ने भाषा में वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए कामा, हाइफन, पैरेन्थिसिस एवं विराम संकेतों का सहारा लिया है। शमेशर, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, विनय आदि की कविताओं में इस प्रकार के प्रयोग देखे जा सकते हैं।

नयी कविता ने बदलते परिवेश और वैज्ञानिक प्रगति को उसी प्राचीन भाषा के माध्यम से चित्रित करने में विवशता का अनुभव किया। अतः नये कवियों ने अपने मनोभावों को प्रभावकारी अभिव्यक्ति देने के लिए नयी भाषा का सृजन किया। कविता में नये शब्द, शब्दों के नये संदर्भ, नये मुहावरे, शब्दों को नया संस्कार, प्रचलित अर्थ से अधिक अर्थ भरने की लालसा ने उन्हें व्याकरण के नियमों को तोड़ने पर विवश कर दिया। नयी कविता का कवि "भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उस में नया, अधिक

1. कुँवरनारायण, चक्रव्यूह, पृ०–66
2. धूमिल, संसद से सडक तक, पृ०–123

व्यापक, अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है।"[1] इस प्रकार नयी कविता की भाषा बहुक्षेत्रीय एवं बहुमुखी है। इसी दौर में आकर भाषा ने विद्रोही रूप अपना लिया। नये क्रिया पद, नये विशेषण जिनमें अकर्मकता और सकर्मकता सभी कुछ मिला हुआ है। हलन्त का लोप, इतिवृत्तात्मकता, बोल चाल की भाषा, ग्रामीण, देशज, विदेशी, देशी, आँचलिक, संस्कृत तद्भव सभी प्रकार के शब्दों का बाहुल्य बढ़ गया।

नयी कविता युग के कवियों ने लोक भाषा को भी साहित्यिक रूप में ढालकर प्रयोग करने की चेष्टा की। उन्होंने लोक गीतों के माध्यम से भाषा के स्वरूप तक की परिधि को अपने वाङ्मय में समाहित कर लिया। नयी कविता में सामान्य बोलचाल की भाषा तथा ग्राम्य–पदावली का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। वह तत्कालीन युगबोध तथा यथार्थपरक जीवन की सच्ची तस्वीर पेश करती है।

(घ) मुहावरे, कहावतें, लोकोक्तियाँ :

मुहावरे किसी भी समाज के रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं के स्मारक होते हैं। उनका निर्माण देश, काल और समाज के विकास एवं परिवर्तन के अनुरूप होता है। मुहावरा अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है– "परस्पर बातचीत और सवाल जवाब करना।" इसे अंग्रेजी में 'इडियम' कहते हैं।"[2] संस्कृत में मुहावरे के समतुल्य सटीक अर्थ को द्योतित करने वाला कोई शब्द नहीं है। डॉ० वासुदेवनन्दन प्रसाद मुहावरे को परिभाषित करते हुए कहते हैं "ऐसा वाक्यांश, जो सामान्य अर्थ का बोध न कराकर किसी विलक्षण अर्थ की प्रतीति कराये, 'मुहावरा' कहलाता है।"[3]

डॉ० भोलानाथ तिवारी मुहावरे को कुछ इस तरह परिभाषित करते हैं– "मुहावरा भाषा विशेष में प्रचलित उस अभिव्यक्त इकाई को कहते हैं, जिसका

---

1. सम्पादक, अज्ञेय, तारसप्तक, पृ०–222
2. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोक–साहित्य की भूमिका, पृ०–162
3. डॉ० वासुदेव नन्दन प्रसाद, आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना, पृ०–254

प्रयोग प्रत्यक्षार्थ से अलग रुढ़ि लक्ष्यार्थ के लिए किया जाता है।"[1] मुहावरे के सम्बन्ध में डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय का कहना है– "मुहावरा किसी बोली या भाषा में प्रयुक्त होने वाला वह अपूर्ण वाक्य खण्ड है जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सतेज, रोचक और चुस्त बना देता है संसार में मनुष्य ने अपने लोक–व्यवहार में जिन–जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा और समझा और बार–बार उनका अनुभव किया उन्हीं को उसने शब्दों में बाँध दिया है। वे ही मुहावरे कहलाते हैं।"[2] कहीं–कहीं 'मुहावरे को रोजमर्रा या 'वाग्धारा' भी कहते हैं।

मुहावरों का प्रयोग बहुत व्यापक है। हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य का वर्णन मुहावरों में पाया जाता है। हजारों वर्षों से बोलचाल में बराबर आते रहने से मुहावरे मानव जीवन से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। वे मानव की समस्त क्रियाओं अनुभूतियों शरीर के अंगों, उपांगों, भोजन के पदार्थों, घर–गृहस्ती के काम–काज, प्रकृति के विभिन्न तत्व–आकाश, आग, हवा, पानी और पृथ्वी, दिन–रात, पेड़–पौधों और जीव–जन्तु सभी से सम्बन्ध रखते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि से मुहावरे सम्बन्धित हैं।

कहावत का सृजन ज्ञान और अनुभव के आधार पर होता है। उसमें मनुष्य के सदियों के लोक–व्यवहार के निष्कर्ष और परम्परागत सामाजिक दृष्टिकोण होते हैं। कहावत को परिभाषित करते हुए डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय ने लिखा है– 'कहावत उस बँधे पद समूह को कहते हैं जिसमें अनुभव की कोई बात संक्षेपतः सुन्दर, प्रभावशाली, चमत्कारिक ढंग से कही जाती है। संस्कृत और हिन्दी में कहावत को सूचित, प्रवाद–वाक्य अथवा लोकोक्ति भी कहते हैं और अंग्रेजी में इसे 'Proverb' तथा उर्दू में 'मसल' कहा जाता है। कहावतें मुहावरे से भिन्न हैं और उनका प्रयोग मुहावरों की भाँति एक वाक्य में हो पाना सम्भव नहीं।"[3]

1. डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय, सामान्य हिन्दी, पृ०–244
2. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ०–163
3. डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय, सामान्य हिन्दी, पृ०–329

जनमानस में कहावत को केवात, केणात, कवाड़ा उक्खान आदि नामों से जाना जाता है। कहावत का शाब्दिक अर्थ कही हुई बात है। कहावत अनुभव सिद्ध बात होती है। कहावतों की भाषा सशक्त और काव्यमय होती है। कहावतों में जीवन के खट्टे–मीठे अनुभवों को सुन्दर एवं सरस भाषा में देखा जा सकता है। उनमें उपमा, रूपक, श्लेष यमक एवं अन्योक्ति आदि अलंकार पूरी जीवन्तता के साथ अवतरित होते हैं। 'कहावतें ऐसे छोटे सच हैं, जो कम से कम शब्दों में हर परिस्थिति में पूरी ताकत के साथ उजागर होते हैं।'[1] ये किसी न किसी मानवीय सच या कमजोरी को सार्वभौमिक और सार्वकालिक रूप में उजागर करती हैं। कहावतों की प्रासंगिकता हमेशा बनी रहती है।

लोकोक्तियाँ अनुभवसिद्ध गंभीर आशय से युक्त उक्तियाँ हैं। लोकोक्तियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। इनका गठन कम से कम अर्थवान शब्दों से होता है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकोक्ति को कुछ इस प्रकार व्याख्यायित किया है– "लोकोक्तियाँ अनुभवसिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग–युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है। उनका प्रकाशन इसके माध्यम से होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समास रूप में चिरसंचित अनुभूत ज्ञान राशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है।"[2]

संस्कृत में लोकोक्ति को सुभाषित या सूक्ति कहते हैं। जिसका अर्थ है सुन्दर रीति से कहा गया कथन (सुष्ठुभाषित सुभाषितम्) इस शब्द का प्रयोग नीचे के संस्कृत श्लोक में इस प्रकार किया गया है–

"सुभाषितेन, गीतेन, युवतीनां च लीलया।
मनो न रमते यस्य, स योगी अथवा पशुः।।'[3]

---

1. बसन्त निरगुणे, लोक संस्कृति, पृ०–117
2. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ०–150
3. वही, पृ०–151

सुन्दर रीति से कही गयी उक्ति को ही सूक्ति कहते है। इसी उक्ति को यदि लोक अर्थात् साधारण मनुष्य प्रयोग में लाने लगते हैं तब उसका नाम लोकोक्ति पड़ जाता है।

लोकोक्ति को परिभाषित करते हुए डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय कहते हैं– "किसी घटना या कहानी से सम्बन्धित अनुभव के सार को व्यक्त करने वाली लोक प्रसिद्ध उक्ति या कथन को लोकोक्ति या कहावत कहते हैं।"[1] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि लोकोक्ति जनमानस में व्याप्त ऐसी अनुभवपरक अभिव्यक्ति है, जिसमें जीवन के सुख–दुःख हास–परिहास, अतीत–वर्तमान की छोटी से छोटी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है, अर्थात् लोक की कोई सारगर्भित उक्ति ही लोकोक्ति है।

काव्य–भाषा को आकर्षक, प्रभावशाली एवं जीवन्त बनाने में मुहावरों का विशेष महत्व है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से कविता की भाषा में निखार एवं सजीवता आ जाती है। भाषा को नयी गति देने का कार्य मुहावरे ही करते हैं। नयी कविता के कवियों ने प्राचीन काल से चले आ रहे पुराने मुहावरों को नयी अर्थवत्ता प्रदान की। नयी कविता के कुछ कवियों ने मुहावरों का प्रयोग प्रभूत मात्रा में किया है। कुछ कवियों ने वर्तमान समय की विसंगतियों एवं बिडम्बनाओं तथा तनावपूर्ण स्थितियों को उभारने वाले मुहावरों का प्रयोग किया है। नयी कविता के कवियों ने प्रायः लोकोक्तियों को तोड़–मरोड़ कर उन्हें नये संदर्भों में प्रयोग किया है। ग्राम्य–चेतना से जुड़े संदर्भों एवं प्रसंगों को सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता "भुजैनियाँ का पोखरा' की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"बालू सूखे पोखरे में जल रही है।
चालीस साल पहले वह डूब कर मरी थी
अब डूब मरने के लिए
कहीं चुल्लू भर पानी भी नहीं है।'[2]

---

1. डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय, सामान्य हिन्दी, पृष्ठ–329
2. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुआनो नदी, पृ०–48

नयी कविता के प्रमुख कवि भवानीप्रसाद मिश्र ने अपनी एक कविता 'शरीर और सपनें' में प्रसिद्ध लोकोक्ति 'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी' का प्रयोग नये ढंग से प्रस्तुत किया है—

"कितना नाचा हूँ तुम्हारे इशारों पर
नौ मन तेल तक जुटाया है मैंने
खुद अपने ही लिए।"[1]

शमशेर बहादुर सिंह की कविता 'घिर गया है समय का रथ' में 'आँख मलना' मुहावरे का प्रयोग दृष्टव्य है—

"दुःख कढ़ता सजल, झलझल।
आँख मलता पूर्व स्रोत।"[2]

'शारद प्रात' कविता में केदारनाथ सिंह ने मुहावरे का प्रयोग करके कविता को जीवन्त बना दिया है—

"गिलियारों में हाँक लगाये,
मन पर, बाँहों पर, कन्धों पर
× × × ×
दिन की सलवटें मिटाये"[3]

नयी कविता युग में अज्ञेय एक सूक्तिकार या लोकोक्ति कार के रूप हमारे सामने आते हैं। उनके विषय में डॉ० अशोक वाजपेयी का कहना है— 'किसी अनुभव या भाव को सिर्फ व्यक्त करने में वे सन्तुष्ट नहीं होते। वे अनुभव को समझने और उसका नैतिक मूल्यांकन करने का भी आग्रह करते हैं। कविताओं में इसका सीधा नतीजा होता है सूक्तियों के रूप में। बल्कि यह देखकर थोड़ा अचरज होता है कि अज्ञेय के पहले महत्वपूर्ण कविता—संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' से उनके संग्रह 'कितनी नावों में कितनी बार' तक सूक्ति और सुभाषितों की एक अटूट परंपरा है जो उन्हें नयी कविता का शायद एकमात्र

1. सम्पादक— नन्दकिशोर आचार्य, भवानी प्रसाद मिश्र, मन एक मैली कमीज है, पृ०—148
2. सम्पादक— अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ०—91
3. सम्पादक— अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृ०—130

सूक्तिकार कवि बनाती है।'[1] 'हरी घास पर क्षण भर' क़ाव्य–संग्रह की पंक्ति उल्लेखनीय है–

"दुःख सबको माँजता है
और–
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु–
जिन को माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।'[2]

अज्ञेय के एक अन्य काव्य–संग्रह 'अरी ओ करूणाप्रभामय' की सूक्तिपरक पंक्ति दृष्टव्य है जिसमें उन्होंने नश्वरता को सृजनात्मकता का आधार बताया है और उसे जीवनदाता के रूप में देखा है–

"शतियों से मैंने बस एक सीख पायी है–
जो मरण–धर्मा हैं वे ही जीवनदायी हैं।" [3]

नयी कविता दौर के एक प्रमुख कवि धूमिल मुहावरों के माध्यम से मानव जीवन में व्याप्त भूख, गरीबी, बेबसी और अत्याचार को उभारते हैं। उनके मुहावरे मानव जीवन की नब्ज टटोलने में अत्यधिक सफल हुए हैं। उनके काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' में हम इसे स्पष्टतः देख सकते हैं, जहाँ 'हरी आँख बनाना', 'अपराध फूलना' पानी से मरना तथा 'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत है' आदि मुहावरे सच्ची अभिव्यक्ति देने में पूर्णतः सफल हुए हुए हैं–

"और जहाँ हर चेतावनी
खतरे को टालने के बाद
एक हरी आँख बनकर रह गयी है।'[4]

धूमिल बढ़ती हुई जनसंख्या और बेरोजगारी के आपसी सम्बन्धों पर कटाक्ष करते हुए मुहावरेदार भाषा में कहते हैं–

---

1. अशोक वाजपेयी, कवि कह गया है, पृ० 19–20
2. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–1, पृ०–249
3. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ०–42
   (काव्य–संग्रह, अरी ओ करूणा प्रभामय)
4. धूमिल–संसद से सडक तक, पृ०–9

'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत हैं'
इससे वे भी सहमत हैं
जो हमारी हालत पर तरस खाकर, खाने के लिए
रसद देते हैं।''[1]
स्थिति की जटिलता को वे कुछ यूँ व्यक्त करते हैं–
''दरअस्ल, पेड़ों पर बच्चे नहीं
हमारे अपराध फूलते हैं''[2]

गरीबी, अकाल और लाचारी का वर्णन धूमिल इन काव्य पक्तियों में कुछ इस प्रकार से करते हैं–

'भारतवर्ष नदियों का देश है।'
बेशक, यह ख्याल ही उनका हत्यारा है।
यह दूसरी बात है कि इस बार
उन्हें पानी ने मारा है।'[3]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताओं में हिन्दी कविता का लोकोन्मुख जातीय संस्कार धनीभूत रूप में मौजदू हैं। उन्होंने अपनी कविताओं में लोकोक्तियों तथा कहावतों के माध्यम से ग्राम्य–समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों, तनावों तथा अत्याचारों एवं अभावों का बहुत जीवन्त चित्रण किया है। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

''चुपाई मारौ दुलहिन
मारा जाई कौआ।
× × × ×
ब्याह की हँसुली गिरौ धरी है
थी बस एक चढ़ौआ।'[4]

मानवीय सर्जनात्मकता की अपनी कविता 'असाध्यवीणा' में अज्ञेय ने सामान्य जन–जीवन से जुड़े नवीन मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सृजन किया है जिनमें 'जाल फँसी मछली की तड़पन' का प्रयोग दृष्टव्य है–

---

1. धूमिल–संसद से सड़क तक, पृ०–15
2. वही, पृ० 15–16
3. वही, पृ० 17
4. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रतिनिधि कविताएँ, पृ० 73–76

"उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुशबु।
किसी एक को नयी वधू की सहमी–सी पायल–ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल–फँसी मछली की तड़पन"[1]

नयी कविता में प्रचलित मुहावरों के साथ–साथ नये मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी प्रयोग प्रभूत मात्रा में हुआ है। जिनमें– दाने–दाने को मोहताज, दबे पाँव आना, गला बजाना, मुँह फेरना, औंधी खोपड़ी पाना, साँचे में ढालना, अधेले की भी पूँछ न होना, गली–गली नापना, खोटी किस्मत, बोटी–बोटी काट लेना, लील जाना, ब्रह्माण्ड घूमना, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा सृजित मुहावरे एक पहाड़ निचोड़ता हूँ मैं, खाली पेट पर चिराग रखना, सूरज की चिलम खींचता है पहाड़, घास की पत्ती के सम्मुख मैं झुक गया और मैंने पाया कि मैं आकाश छू रहा हूँ। फिर बसंत ने मुझे डसा, आकाश का साफा बाँधकर। राजनीति एवं सामाजिक परिवेश से जुड़े मुहावरों एवं कहावतों का का प्रयोग धूमिल, रघुवीर सहाय, नरेन्द्र मोहन एवं लीला–धर जगूड़ी में देखा जा सकता है। जैसे– पत्थरों से टकराती है हवा, ऊँचा बहुत ऊँचा स्वर्गिक, कविता चाहे चूल्हे भाड़ में जाय, कुटुमदारी, निबाहते हुए, आँखे लाल पीली करना, बीड़ी और बीबी के बीच माचिस की तरह बजते हुए आदि मुहावरों का प्रयोग किया है। धूमिल ने धर्मशाला हो जाना, गाय का गोबर करना, पीला अंधकार, फिरंगी हवा, टिम–टिमाता हुआ आदमी, भविष्य के रंगीन स्वप्नों का जोखना, चिलम भरना, चेहरों का नंगा होना। जैसे नवीन मुहावरों को जन्म दिया है। गिरिजा कुमार माथुर की अपनी अलग विशेषता है– साँचे में ढालना, हाथ पसारना, सत्य की ताड़ना आदि मुहावरे एवं पिण्ड छुड़ाना, एक म्यान में दो तलवारें कागज की नाव आदि लोकोक्तियों का प्रयोग किया।

---

1. अज्ञेय, सदानीरा, सम्पूर्ण कविताएँ, भाग–2, पृ०–123
(काव्य–संग्रह, आँगन के पार द्वार)

नयी कविता के युवा कवियों ने नये मुहावरों का सृजन करके भाषा को एक नयी दृष्टि दी। धूमिल की मुहावरों पर पकड़ बहुत सशक्त थी। जैसे– क्रान्ति यहाँ के असंग लोगों के लिए किसी अबोध बच्चे के हाथों की जूजी है, यहाँ 'जूजी' शब्द का बहुत ही सशक्त और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। 'हवा में चमकदार गोल शब्द उछालना, अर्थात् चिकनी–चुपड़ी बातें करना। भाषण उगलना, काली आत्मा पर सफेद कपड़ा डालना, जूते चटकाना, अंधी लड़की की आँखों में सहवास का सुख तलाशना, घोड़े और घास को एक जैसी छूट। आदि।

नयी कविता के शैल्पिक–प्रतिमानों में भी ग्राम्य–बोध की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। नयी कविता जन–जीवन से सानिध्य प्राप्त करने की अभिलाषिनी प्रतीत होती है। वह अपना उपजीव्य तलाशने के लिए ठेठ ग्राम–जीवन तक गयी है, जहाँ से उसने ग्रामीण तेवर से युक्त देशज शब्दों को ग्रहण किया है। उसमें सामान्य जन–जीवन, लोक–जीवन तथा अंचलों से ग्रहण किये गये शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। नयी कविता में सामान्य बोलचाल की भाषा, साधारण गद्य की भाषा तथा ग्राम्य पदावली का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। छन्दों के स्थान पर उसने मुक्त छन्द तथा संगीतात्मकता के स्थान पर अर्थ की लय को महत्त्व दिया है। पौराणिक प्रतीकों को युगीन संदर्भों से जोड़कर प्रयुक्त किया गया है। भाषागत संरचना, प्रतीकों, बिम्बों, शैलीगत वैशिष्टय, मुहावरों, लोकोक्तियों आदि के प्रयोग में ग्राम्य–जीवन के समावेश को कहीं भी खोजा जा सकता है। इस प्रकार हम देख सकते है कि नयी कविता में अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर ग्राम्य–बोध मौजदू है।

□□□□□